अंक 73
अप्रैल-जून 2023
ISSN : 2231-6329

आलोचना

त्रैमासिक

जाति-सुधार की सवर्ण राष्ट्रवादी परियोजना की सीमा को दिखलाता *माधुरी* (संपादक : दुलारेलाल भार्गव) के जुलाई, 1925 अंक में प्रकाशित हकीम मुहम्मद ख़ाँ का कार्टून *अछूतोद्धार*

फ़ाशीवाद : राज्य और संस्कृति / देवी प्रसाद मिश्र
आनंदमठ : इतिहास, उपन्यास और सिनेमाई रूपांतरण / जवरीमल्ल पारख
वर्ण-विचार, दृश्य-विचार, राष्ट्र-विचार : हिंदी कार्टून, 1920-1940 / प्रभात कुमार

Scanned with OKEN Scanner

आलोचना

त्रैमासिक

अंक तिहत्तर

अप्रैल-जून 2023

संपादक
आशुतोष कुमार
संजीव कुमार

सह-संपादक
आर. चेतनक्रांति

कला संपादक
हरीश आनंद

प्रबंध संपादक
अशोक महेश्वरी

Scanned with OKEN Scanner

आलोचना 73
त्रैमासिक

संपादकीय
ज़ब्ती का सर्वाधिकार और बचा-खुचा चौथा खंभा : **संजीव कुमार** 5

कविता
नेहा नरूका की दस कविताएँ 11

धरोहर
शहीद युवा नायक **चंद्रशेखर** की कविताएँ : प्रस्तुति–जीतेंद्र वर्मा 18

वाद-विवाद-संवाद
'कफ़न' को यहाँ से पढ़ें : **वीरेन्द्र यादव** 23

आलेख
फ़ाशीवाद : राज्य और संस्कृति : **देवी प्रसाद मिश्र** 29
आनंदमठ : इतिहास, उपन्यास और सिनेमाई रूपांतरण : **जवरीमल्ल पारख** 38
वर्ण-विचार, दृश्य-विचार, राष्ट्र-विचार : हिंदी कार्टून, 1920-1940 : **प्रभात कुमार** 55
संगीत, स्मृति और मंगलेश का काव्यलोक : **गोबिंद प्रसाद** 77
पुरुष-परीक्षा : विद्यापति का लोकवृत्त और राजवृत्त : **कमलानंद झा** 82
कला-साहित्य और वर्तमान विसंगति : **अच्युतानंद मिश्र** 96
विवाह, स्त्री-जीवन और महादेवी वर्मा के रेखाचित्र : **कामिनी** 104

किताबनामा
समुद्र, समाज और साम्राज्य : **गोपाल प्रधान** 115

आख़िरी सलाम
अ-सामाजिकता का विकसित समाज (संदर्भ : गोदार की दो फ़िल्में) : **कुमार अंबुज** 126

समीक्षा
अक्का महादेवी—एक सम्भावना : **राधावल्लभ त्रिपाठी** 135
भूख और कामोन्माद के प्रतिसंध और *कीड़ाजड़ी* : **डॉ. अंबुज कुमार पांडेय** 141

आख़िरी सफ़ा
अखंड भारत बनाम हिंद महादेश : **आशुतोष कुमार** 146

Scanned with OKEN Scanner

विवाह, स्त्री-जीवन और महादेवी वर्मा के रेखाचित्र

कामिनी

> "निश्चित ही महादेवी के अध्ययन की तरह उनके लेखन का दायरा भी अत्यंत विस्तृत था। वे किसी सिद्धांत का सहारा न लेकर भारतीय स्त्री-जीवन की यथार्थ स्थिति के आधार पर पितृसत्तात्मक समाज की बेड़ियों की पहचान कर रही थीं।"

उन्नीसवीं सदी को दुनिया में महिला-अधिकारों और उनकी स्वतंत्रता के लिए लड़ी गई लड़ाइयों की सदी के रूप में याद किया जाए तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। अठारहवीं सदी का उत्तरार्ध और उन्नीसवीं सदी का पूर्वार्ध करवट ले रही नारी-चेतना को अभिव्यक्त करने के साथ एक सुसंगठित आधुनिक नारीवादी आंदोलन को जन्म देता हुआ दिखाई पड़ता है।

सन 1918 से 1936 तक का समय भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन और हिंदी साहित्य का सबसे उर्वर समय है, जहाँ महात्मा गांधी, भगत सिंह, डॉ. अंबेडकर जैसे राजनीतिज्ञों के साथ प्रेमचंद, निराला, महादेवी सहित अनेक बड़े साहित्यकार मिलकर एक बड़ा राजनीतिक और सांस्कृतिक वृत्त रचते दिखाई पड़ते हैं। राष्ट्रीय मुक्ति के स्वप्न के भीतर नारी-मुक्ति, दलित-प्रश्न तथा किसानों की पीड़ा और सरमायेदारी की आहट को साफ़-साफ़ सुना जा सकता है।

इस पूरे परिदृश्य में महादेवी का स्वर अलहदा और विशेष है। नारी-मुक्ति के सवाल पर उनका दृष्टिकोण अपने समकालीनों से अधिक वस्तुपरक व यथार्थवादी है। स्त्री-जीवन की पीड़ा और दुख-दर्द को एक स्त्री की दृष्टि से देखने और आत्मसात कर लेने की क्षमता महादेवी के साहित्य की ख़ास विशेषता है।

इस लेख में महादेवी के जिन रेखाचित्रों को आधार बनाया गया है उनका लेखनकाल 1930 से लेकर 1940 के बीच का है। ये रेखाचित्र हमें बताते हैं कि पूरी दुनिया में चल रहे नारीवादी आंदोलन को महादेवी ठेठ भारतीय ज़मीन पर खड़ी होकर देख-समझ रहीं थीं। महादेवी का अध्ययन वेदों-उपनिषदों से लेकर मार्क्स-लेनिन* तक फैला हुआ था जिसके साथ बौद्ध करुणा ने मिलकर उनकी व्यापक दृष्टि का निर्माण किया था। इसके बावजूद उनका मूल्यांकन साहित्य के सीमित दायरे में ही किया गया है।

कामिनी की आलोचना की ख़ूबी है मार्क्सवाद और स्त्रीवाद की अंतर्दृष्टियों का रचनात्मक उपयोग। *आलोचना* पत्रिका में उनका यह पहला लेख है। छत्तीसगढ़ के अंबिकापुर में हिंदी साहित्य पढ़ाती हैं।
संपर्क : kamini31284@gmail.com

* महादेवी 'सामयिक समस्या' शीर्षक अपने लेख में स्त्री के सवाल पर लेनिन को वृहद् रूप से कोट करती हैं। (महादेवी साहित्य भाग-4)

Scanned with OKEN Scanner

महादेवी का मूल्यांकन प्रमुखत: उनकी कविता के संदर्भ में ही हुआ है और वहाँ भी उन्हें अधिकतर पीड़ा-वेदना और रहस्यवाद की कवयित्री के रूप में ही याद किया गया है। उनकी मुक्तिकामी व्यापक दृष्टि को समझने और रेखांकित करने में हिंदी आलोचना प्राय: विपन्न ही रही। वह तो उनका गद्य था जिसने पाठकों को उनकी कविताओं में बह रहे मुक्ति, संघर्ष व सबसे कमज़ोर के प्रति उनकी अपार करुणा की अंत:सलिला से परिचित करवाया। इधर के वर्षों में महादेवी के संदर्भ में नई दृष्टि से सोचने-समझने वाले आलोचकों में डॉ. राजेंद्र कुमार, डॉ. सुधा सिंह आदि महादेवी के साहित्य को इसी व्यापकता में देखे जाने की बात करते हैं। जब तक हम इस बात को स्वीकार नहीं कर लेते कि महादेवी के साहित्य का दायरा केवल उनकी कविता तक ही सीमित नहीं है, तब तक हम महादेवी का मूल्यांकन उस बँधे-बँधाए दायरे में ही करते रहेंगे। इस बात का संकेत करते हुए ही राजेंद्र कुमार जहाँ उनकी कविताओं के मूल्यांकन के लिए उनके गद्य की रोशनी को आवश्यक समझते हैं, वहीं सुधा सिंह उनके साहित्य के व्यापक सरोकारों को व्याख्यायित करती हैं। राजेंद्र कुमार *नया ज्ञानोदय* में छपे अपने एक लेख, जो बाद में उनकी किताब *कविता का समय-असमय* में संकलित हुआ, में इस बात का स्पष्ट संकेत करते हैं कि महादेवी की कविता में आई हुई वेदना या पीड़ा का स्वर किसी अलौकिक जगत का नहीं है, वह यथार्थ की ठोस ज़मीन पर आधारित है। यह वेदना-पीड़ा किसी रहस्यवाद की प्रेरणा से नहीं आई बल्कि भारतीय स्त्री-जीवन का इतिहास तथा वर्तमान इसके मूल में हैं जो उनके रेखाचित्रों और संस्मरणों में साफ़-साफ़ देखा जा सकता है। महादेवी केवल इसका चित्रण करके ही छुट्टी नहीं पा लेतीं, *शृंखला की कड़ियाँ* में इससे बाहर निकलने का रास्ता भी सुझाती हैं। सुधा सिंह अपनी किताब *स्त्री संदर्भ में महादेवी* में एक ओर जहाँ नवजागरण, राष्ट्रवाद, बुद्धिजीवी की भूमिका, साहित्यिक सरोकार जैसे विविध पक्षों पर महादेवी के लेखन का विस्तृत मूल्यांकन करती हैं वहीं दूसरी ओर पुरुषवादी आलोचना-दृष्टि से किए गए महादेवी के मूल्यांकन से उत्पन्न हुए ख़तरों की ओर भी संकेत करती हैं। वे लिखती हैं :

> *महादेवी के स्त्री संबंधी चिंतन में आधुनिक स्त्री की चेतना के साथ परंपरित स्त्री की चेतना का जो अंतर्द्वंद्व है, उसे देखा जाना चाहिए। हमारे आलोचक भारतेंदु और उनके युग के लेखकों के अंतर्द्वंद्वों की व्याख्या कर उन्हें आधुनिक युग का निर्माता मानने में संकोच नहीं करते, पर महादेवी के लेखन में पाश्चात्य स्त्री के साथ भारतीय स्त्री की तुलना और भारतीय स्त्री की भिन्न स्थिति के बयान से तत्काल महादेवी की स्त्री संबंधी मूलगामी चिंता को केवल राष्ट्रवाद और छायावाद के दायरे में क़ैद करना और यह कहना कि वे स्त्रीवादी चिंतक नहीं थीं; उनका स्त्रीवाद से लेना-देना नहीं था; उन्हें स्त्रीवादी मत बनाइए—इसे कूढ़मगजी ही कहेंगे।*[1]

निश्चित ही महादेवी के अध्ययन की तरह उनके लेखन का दायरा भी अत्यंत विस्तृत था। वे किसी सिद्धांत का सहारा न लेकर भारतीय स्त्री-जीवन की यथार्थ स्थिति के आधार पर पितृसत्तात्मक समाज की बेड़ियों की पहचान कर रही थीं। यह लेख महादेवी के रेखाचित्रों को आधार बनाते हुए स्त्री-जीवन में विवाह की अनिवार्यता और उसके धार्मिक, सामाजिक व आर्थिक कारणों पर महादेवी के नज़रिये को समझने की एक कोशिश है। इन रेखाचित्रों को लिखे जाने के पीछे महादेवी जिस घटना का उल्लेख करती हैं वह उनके साहित्य को समझने का एक सूत्र प्रदान करती है :

> *कहानी एक युग पुरानी पर करुणा से भीगी है। मेरे एक परिचित परिवार में स्वामिनी ने अपने एक वृद्ध सेवक को किसी तुच्छ से अपराध पर निर्वासन का दंड दे डाला और फिर उनका अहंकार उस अकारण दंड के लिए असंख्य बार माँगी गई क्षमा का दान भी न दे सका।*
>
> *ऐसी स्थिति में वह दरिद्र, पर स्नेह में समृद्ध बूढ़ा, कभी गेंदे के मुरझाये हुए दो फूल, कभी हथेली की गर्मी से पसीजे हुए चार बताशे और कभी मिट्टी का एक रंगहीन खिलौना लेकर अपने नन्हें प्रभुओं की प्रतीक्षा में पुल पर बैठा रहता था। नए नौकर के साथ घूमने जाते हुए बालकों को जब वह अपने तुच्छ उपहार देकर लौटता तब उसकी आँखें गीली हो जाती थीं।*
>
> *सन 30 में उसी भृत्य को देखकर मुझे अपना बचपन और उसे अपनी ममता से घेरे हुए रामा, इस तरह स्मरण आए कि अतीत की अधूरी कथा लिखने के लिए मन आकुल हो उठा। फिर धीरे-धीरे रामा का*

परिवार बढ़ता गया और अतीत-चित्रों में वर्तमान के चित्र भी सम्मिलित होते गए।[2]

यही करुणा महादेवी के साहित्य का प्राण-तत्त्व है। उनके अतीत के सभी चलचित्र तथा स्मृति की सभी रेखाएँ इसी करुणा पर अवस्थित हैं। महादेवी के साहित्य में जो भी दुख-पीड़ा या वेदना है, वह न तो रहस्यवादी है, न अलौकिक। वह आम जन की पीड़ा है जिनका परिचय उनके रेखाचित्रों के माध्यम से आसानी से प्राप्त किया जा सकता है। महादेवी का कविहृदय उन तमाम लोगों के दुख-दर्द से एकाकार होकर अभिव्यक्त हो उठा है। उनके रेखाचित्रों के सभी पात्र जीवन की कठिन से कठिन स्थितियों का सामना करते हुए भी निरंतर संघर्षशील हैं।

शायद यही कारण है कि महादेवी की कविता में दीपक बार-बार आता है जो अँधेरे से लगातार संघर्ष करता दिखाई पड़ता है। महादेवी के ये सभी पात्र उसी दीपक की भाँति हैं जो कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी अंतिम साँस तक संघर्षशील हैं। महादेवी इन सभी से बहुत गहरे जुड़ी हुई हैं जिसका उल्लेख वे भूमिका में करती हैं :

> *प्रस्तुत संग्रह की संस्मरण-कथाएँ पाठकों का सस्ता मनोरंजन कर सकें, ऐसी कामना करके मैं इन क्षत-विक्षत जीवनों को खिलौनों की हाट में नहीं रखना चाहती। यदि इन अधूरी रेखाओं और धुँधले रंगों की समष्टि में किसी को अपनी छाया की एक रेखा भी मिल सके, तो यह सफल है, अन्यथा अपनी स्मृति की सुरक्षित सीमा से इसे बाहर लाकर मैंने अन्याय ही किया है।*[3]

इन पंक्तियों से हम यह समझ सकते हैं कि महादेवी इन चरित्रों की याद के बहाने समाज के उस दुख-दर्द और संघर्ष को रेखांकित करना चाहती थीं जो सामान्यत: हमारी नज़रों से दूर रहता है। इनमें से ज़्यादातर पात्र समाज के उस वर्ग से आते हैं जो आर्थिक रूप से निचले पायदान पर खड़ा है। महादेवी ने ज़्यादातर गीत लिखे हैं, और उनके लिए 'मैं' शैली का प्रयोग किया है। मेरी जानकारी में उन्होंने निराला की तरह कहीं भी अपने 'मैं' को परिभाषित नहीं किया कि मैंने 'मैं' शैली अपनाई / देखा दुखी एक निज भाई! लेकिन उनका गद्य उनके गीतों के 'मैं' को परिभाषित करता है।

उनकी कविता है 'शलभ मैं शापमय वर हूँ' जिसमें वे कहती हैं कि :

रात के उर में दिवस की चाह का शर हूँ!
शून्य मेरा जन्म था
अवसान है मुझको सवेरा;
प्राण आकुल के लिए
संगी मिला केवल अँधेरा।[4]

क्या यह समूची स्त्री-जाति की पीड़ा का स्वर नहीं है? महादेवी की मैं शैली निराला से अलग नहीं है लेकिन उन्हें हमेशा निज के संकीर्ण दायरे में ही समझने की कोशिश हुई जबकि उनका गद्य उनकी कविताओं की कुंजी के रूप में हमेशा से मौजूद था।

महादेवी के रेखाचित्रों के मूल में स्त्री-जीवन के बहुविध चित्र हैं। इनके माध्यम से वे स्त्री-जीवन के संघर्ष और समाज में उनकी स्थिति का उद्घाटन करती हैं। जिस समय महादेवी यह सब लिख रही थीं उस समय पूरी दुनिया में स्त्री के साथ किए जानेवाले लैंगिक भेदभाव के ख़िलाफ़ मुखर रूप से विभिन्न संगठन काम कर रहे थे। महादेवी ने भी अपने विभिन्न लेखों में स्त्री के अधिकारों के समर्थन में सशक्त ढंग से अपने विचार व्यक्त किए हैं जिन्हें बाद में *शृंखला की कड़ियाँ* (1942) नाम से प्रकाशित किया गया।

उनके रेखाचित्रों में स्त्री-जीवन से जुड़ी बातें बहुत सरल-सहज ढंग से अभिव्यक्त हुई हैं लेकिन इसके साथ ही इन रेखाचित्रों की जो एक महत्त्वपूर्ण बात है वह यह कि महादेवी का लैंगिक विमर्श वर्ग-विभाजन की स्पष्ट दृष्टि से संचालित है। महादेवी के ज़्यादातर स्त्री पात्र ग़रीब, दलित या पिछड़े वर्ग से हैं जिनके सामने समानता और स्वतंत्रता की लड़ाई से पहले दो जून की रोटी का सवाल है। वे तमाम समस्याओं से जूझते हुए सच्चाई और दृढ़ता के साथ जीवन की लड़ाई लड़ते दिखाई पड़ते हैं।

एक सामाजिक व्यवस्था के रूप में विवाह का मौजूदा स्वरूप अनेक प्रकार से स्त्री के शोषण और उसके प्रति किए जाने वाले अन्याय का साक्षी रहा है। विवाह के वर्तमान स्वरूप तक पहुँचने में हमारी सभ्यता के अनेक चरण आते हैं। एंगेल्स पितृसत्ता के स्थापित होने के एक बड़े कारण के रूप में विवाह के वर्तमान स्वरूप को देखते हैं। उनका मानना है कि संपत्ति का निजी हाथों में केंद्रित होना एकल विवाह का और स्त्री को दोयम दर्जे पर धकेलने का मुख्य कारण रहा है।

एंगेल्स की इस थ्योरी ने इस संदर्भ में आगे विभिन्न

Scanned with OKEN Scanner

तरह के अध्ययनों और शोध-कार्यों को प्रेरणा दी है, जिससे यह बात भी निकलकर आई कि पितृसत्ता के मज़बूत होने में संपत्ति के संकेंद्रण के साथ-साथ पर्याप्त भौगोलिक और जैविकीय कारण भी शामिल रहे हैं। स्त्री बच्चे को जन्म देती है इसलिए वह हर समय कृषि या शिकार के सभी कामों में सहयोग नहीं दे सकती और यही कारण है कि बाह्य जीवन में पुरुषों ने अपना आधिपत्य स्थापित किया और धीरे-धीरे स्त्री को ढकेल कर घर के भीतर बन्द कर दिया। एक तथ्य यह भी है कि मातृसत्तात्मक समाज वहीं पर बचे रहे जहाँ सभ्यताओं का विकास कम हुआ। जहाँ नदी-घाटी सभ्यता विकसित नहीं हुई, कृषि का विकास कम हुआ, वहीं पर मातृसत्तात्मक समाज लंबे समय तक बने रहे। ऐसे समाज जहाँ अधिशेष से ज़्यादा संतानोत्पत्ति को महत्त्व दिया गया वहाँ पर मातृसत्तात्मक समाज लंबे समय तक बचे रहे। यह फ़िलहाल अलग से एक लेख का विषय है।

पितृसत्ता के स्थापित होने से लेकर उसे मज़बूती प्रदान करने तक विवाह की एक महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। एक लंबे समय तक और कई मायनों में आज भी स्त्री पर होने वाले अत्याचारों को निजी मसले की श्रेणी में डालकर हमारा समाज और राजनीति भी इससे किनारा करती रही है। विभिन्न सुधार आंदोलनों ने स्त्री-शिक्षा, सती-प्रथा, विधवा-पुनर्विवाह जैसे मसलों की बात तो की किंतु विवाह की अनिवार्यता स्त्री के जीवन को कैसे बदतर बनाती है इस पर नारीवादी आंदोलनों से पहले मुखर रूप से ध्यान नहीं दिया गया। महादेवी के रेखाचित्रों के स्त्री-पात्र उस बदतर स्थिति को भोगते हुए नज़र आते हैं। विवाह का अर्थ है स्त्री की यौनिकता पर नियंत्रण और धर्म, इज़्ज़त आदि को स्त्री से नैतिक रूप से बाँध दिया जाना, जिससे वह अपनी स्थिति के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाने की कल्पना भी न कर सके।

महादेवी अपने रेखाचित्रों में विवाह से जुड़ी स्त्री-जीवन की विविध स्थितियों को अभिव्यक्ति देती हैं। पितृसत्ता स्त्री की यौनिकता पर नियंत्रण कर समस्त शक्ति-प्रतिष्ठानों पर क़ब्ज़ा जमा लेती है, जिसके परिणामस्वरूप स्त्री-जीवन पर पुरुष की पहरेदारी को सामान्य रूप से स्वीकार कर लिया जाता है। यही बात विवाह को नैतिकता का आवरण पहनाकर स्त्री को नियंत्रित करने का अधिकार प्रदान करती है। महादेवी के रेखाचित्रों के स्त्री-पात्र जिस विवश स्थिति में हैं, वह विवाह संस्था पर बार-बार सवाल खड़ा करता है। ग़ौरतलब है कि आर्थिक आत्मनिर्भरता और यौनिकता, ये दो ऐसे मुद्दे थे जिन्हें नारीवादी आंदोलनों में बहुत बाद में रेखांकित किया गया, लेकिन महादेवी वर्मा इस बात को बहुत गहराई से समझ चुकीं थीं। वे जानती थीं कि जब तक स्त्री को नियंत्रित करने की शक्ति पुरुष के पास रहेगी, उसका सशक्त हो पाना बहुत कठिन है। यह बात सत्य है कि कहीं भी बहुत प्रत्यक्ष तरीक़े से उन्होंने विवाह का विरोध नहीं किया लेकिन जब हम उनके रेखाचित्र पढ़ते हैं तो आश्चर्यचकित हुए बिना नहीं रह पाते। बहुत गहरे जाकर उन्होंने महिलाओं की पीड़ा पकड़ी थी कि कैसे पितृसत्तात्मक समाज हमारी मानसिक संरचना का निर्माण करता है। पुरुष के हर अत्याचार को स्त्री अपना प्राप्य समझकर भोगती है। उनके रेखाचित्रों के विभिन्न स्त्री-पात्र अलग-अलग स्थितियों में हैं लेकिन वे जहाँ भी हैं विवाह और पितृसत्ता उनकी दुरवस्था का कारण है। सवर्ण, पिछड़ा, दलित, अमीर, ग़रीब हर जगह समस्या का मुख्य कारण यह पितृसत्ता ही है किंतु उसके स्वरूप अलग-अलग हैं।

जैसे 'भाभी' किन्हीं सेठ जी की बहू हैं, ज़ाहिर-सी बात है, वे आर्थिक रूप से थोड़े सबल हैं। वहाँ भाभी के विधवा होने के बाद उन पर कड़े नियम लाद दिए गए हैं। जिसकी उम्र अभी मात्र 19 वर्ष की है उसे दुनिया के सारे रंगों से काटकर घर की चारदीवारी में क़ैद कर दिया गया है। उसके लिए एक ही वक़्त भोजन की छूट है। महादेवी व्यंग्य करती हुई लिखती हैं :

> *वृद्ध एक ही समय भोजन करते थे और वह तो विधवा ठहरी! दूसरे समय भोजन करना ही यह प्रमाणित कर देने के लिए पर्याप्त था कि उनका मन विधवा के संयम-प्रधान जीवन से ऊबकर किसी विपरीत दिशा में जा रहा है।*[5]

एक स्त्री को उस बात की सज़ा दी जा रही है जिसमें उसकी कोई भूमिका है ही नहीं। इन्हीं सब स्थितियों के चलते नवजागरण-काल में विधवा के विवाह पर ख़ूब ज़ोर दिया गया लेकिन विवाह करा देना किसी समस्या का हल नहीं है, इस बात को महादेवी ने बहुत शिद्दत से महसूस किया था। इसके विपरीत ग़रीब परिवारों में इस तरह के कड़े नियम स्त्री के ऊपर नहीं हैं क्योंकि वहाँ परिवार का प्रत्येक सदस्य मज़दूरी करेगा तब कहीं घर चलना संभव हो पाएगा, लेकिन वहाँ चिंता यह रहेगी कि कैसे इसका विवाह कर एक पुरुष की देख-रेख में पहुँचाया जाए। जैसा

Scanned with OKEN Scanner

बिबिया या बिट्टो के साथ होता है।

हमारे समाज में विवाह को अल्ला मियाँ की गाय का दर्जा प्राप्त है, लाखों स्त्रियों को नरक में धकेलने के बाद भी जिसकी पवित्रता अक्षुण्ण है। भाभी, सबिया, बिट्टो, लछमा, बिबिया सभी की समस्या इसी विवाह के इर्द-गिर्द घूमती है।

सबिया एक ऐसी स्त्री है जो पति द्वारा किए गए विश्वासघात के बावजूद छोटे से बच्चे को लेकर जीवन की लड़ाई लड़ रही है। उसका पति उस समय उसे छोड़कर गया जब वह सौरी में थी। पति के चले जाने के बाद भी उसने हार नहीं मानी और दो छोटे-छोटे बच्चों और अंधी सास की देखरेख के लिए सुबह से लेकर शाम तक खटती रहती है। इतना ही नहीं जब सबिया का पति दूसरी स्त्री के साथ वापस आता है तो वह उसे अपने घर में जगह देने के साथ-साथ पंचायत द्वारा लगाया गया दंड भी भरती है। यह पितृसत्तात्मक समाज में ही हो सकता है कि स्त्री पुरुष के सारे दुर्गुणों को न केवल बर्दाश्त करती है बल्कि अपनी सारी तकलीफ़ को छिपा रखने की करामात भी जानती है। पितृसत्ता स्त्री की मानसिक स्थिति का कुछ इस तरह अनुकूलन करती है कि उसे यह सब असहज नहीं करता। पितृसत्ता से लड़ाई ज़्यादा चुनौतीपूर्ण इसीलिए है कि यहाँ नैतिकता और पवित्रता के आवरण में सब कुछ वैध लगता है, बल्कि जब कोई स्त्री उससे बाहर निकलने का प्रयास करती है तो उसे समाज की व्यवस्था को बिगाड़ने वाला माना जाता है। यानी जो असहज, असामान्य है उसे सहज, सामान्य बना दिया गया है और जो सहज है उसे असहज।

महादेवी लिखती हैं :

> *पुरुष भी विचित्र है। वह अपने छोटे से छोटे सुख के लिए स्त्री को बड़ा से बड़ा दुख दे डालता है और ऐसी निश्चिंतता से, मानो वह स्त्री को उसका प्राप्य ही दे रहा है। सभी कर्तव्यों को वह चीनी से ढँकी कुनैन के समान मीठे-मीठे रूप में ही चाहता है। जैसे ही कटुता का आभास मिला कि उसकी पहली प्रवृत्ति सब कुछ जहाँ का तहाँ पटककर भाग खड़े होने की होती है।*[6]

महादेवी की इन पंक्तियों को पढ़ते हुए बरबस कवि विद्रोही की यह पंक्तियाँ ज़ेहन में कौंध उठती हैं :

> *कितना ख़राब लगता है एक औरत को अपने रोते हुए पति*
> *को छोड़कर मरना*
> *जबकि मर्दों को रोती हुई स्त्री को मारना भी बुरा नहीं लगता*
> *औरतें रोती जाती हैं, मरद मारते जाते हैं,*
> *औरतें और रोती हैं, मरद और मारते हैं*
> *औरतें ख़ूब ज़ोर से रोती हैं*
> *मरद इतनी ज़ोर से मारते हैं कि वे मर जाती हैं।*[7]

कोई चाहे तो इसे महादेवी की चेतना का विस्तार कह सकता है।

बिट्टो समाज का वह प्रतिनिधि स्त्री-पात्र है, जिसे विवाह को स्त्री-जीवन का एकमात्र लक्ष्य मानने की सामाजिक मान्यता का भुगतान अनेक किश्तों में करना पड़ता है। बिट्टो बचपन में ही विधवा हो गई थी, जब तक माता-पिता जीवित थे तब तक तो किसी तरह उसका अपने घर में गुज़ारा चलता रहा लेकिन उनकी मृत्यु के बाद उस घर में बिट्टो का रहना उनकी भाभियों को अखरने लगा और इसका एकमात्र उपाय था कि किसी तरह उसका विवाह कर दिया जाए। बिट्टो की इच्छा-अनिच्छा का इस समाज में कोई महत्त्व नहीं। अंत में 32 वर्षीय बिट्टो का विवाह 54 वर्ष के पुरुष के साथ करके उसके घरवाले अपने कर्तव्य से मुक्ति पाते हैं।

विवाह चाहे जिस उम्र के पुरुष के साथ हो वही स्त्री की मुक्ति का एकमात्र उपाय है, बिट्टो की कथा इस बात को प्रमाणित करती है। यह कथा कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है जिसमें महादेवी बिट्टो के माध्यम से स्त्री के लिए विवाह की अनिवार्यता का विश्लेषण करते हुए उसके संपत्ति संबंधी अधिकारों की पड़ताल करती हैं :

> *वह समझ ही नहीं पाती थी कि जिस घर में उसका जन्म और पालन हुआ है, उसी में यदि रात-दिन काम करके अपने ही सहोदरों से उसे भोजन-वस्त्र मिल जाता है, तो उसे कृतज्ञता के समुद्र में क्यों डूब जाना चाहिए। अकेले बड़े भाई ही नौकर थे, शेष दोनों उसी ज़मीन-जायदाद की देख-रेख में लगे रहते थे जो उसके पिता की थी।*[8]

'बिबिया' एक ऐसी स्त्री की कथा है जो रूप में सुंदर होने के साथ ही अद्भुत साहसी, परिश्रमी और स्वाभिमानी है, लेकिन विवाह के पश्चात उसके इस स्वाभिमान को ही उसकी दुश्चरित्रता का आधार बनाया जाता है। उसका तीन

बार विवाह होता है। पहले पति की मृत्यु बचपन में ही हो जाती है। दूसरे विवाह में जब वह अपने पति द्वारा किए जाने वाले अन्याय को बर्दाश्त नहीं करती तो उसके चरित्र पर लांछन लगाया जाता है।

हमारे समाज में विवाह इतना आवश्यक है कि तीसरी बार उसका विवाह पाँच बच्चों के पिता से कराया जाता है। तीसरी बार बिबिया चुपचाप बिना कुछ बोले अपने आप को उन बच्चों की देखभाल में लगा देती है लेकिन यह भी हमारे पुरुषवादी समाज से बर्दाश्त नहीं होता और दुबारा उसे दुश्चरित्र साबित करते हुए मारा-पीटा जाता है।

महादेवी लिखती हैं :

> *बिबिया के शरीर पर घूँसों के भारीपन के स्मारक गुम्मड़ उभर आए थे, लकड़ी के आघातों की संख्या बताने वाली नीली रेखाएँ खिंच गईं थीं और लातों की सीमा नापने वाली पीड़ा जोड़ों में फैल रही थी। उस पर द्वार का बन्द हो जाना उसके लिए क्षमा की परिधि से निर्वासित हो जाना था। वह अन्धकार में अदृष्ट की रेखा जैसी पगडंडी पर गिरती-पड़ती, रोती-कराहती अपने नैहर की ओर चल पड़ी। झनकू को पति का कर्तव्य सिखाने के लिए कभी एक पंच-देवता भी आविर्भूत नहीं हुए, पर बिबिया को कर्तव्यच्युत होने का दंड देने के लिए उनकी पंचायत बैठी।*[9]

इतने अत्याचार बर्दाश्त करने के बाद जब मायके में भी उस पर व्यंग्य-बाणों की वर्षा की जाती है तो अंत में एक दिन वह कहीं ग़ायब हो जाती है। यह समाज ऐसी स्त्री की कल्पना करता है जो बिना कोई प्रतिरोध व्यक्त किए चुपचाप सारे अन्याय को बर्दाश्त करती रहे, तब तक तो वह 'यत्र नार्यस्तु पूज्यंते' वाली नारी है, जैसे ही उसने अपने चेतन और जागृत होने का प्रमाण दिया, वह कुलटा हो जाएगी!

महादेवी बिबिया जैसे चरित्रों के स्पष्ट प्रमाण के आधार पर ही *शृंखला की कड़ियाँ* में लिखती हैं :

> *शताब्दियाँ पर शताब्दियाँ बीती चली जा रही हैं, समय की लहरों पर परिवर्तन पर परिवर्तन बहते आ रहे हैं, परिस्थितियाँ बदल रही हैं परंतु समाज केवल स्त्री को जिसे उसने दासता के अतिरिक्त और कुछ देना नहीं सीखा, प्रलय की उथल-पुथल में भी शिला के समान स्थिर देखना चाहता है। ऐसी स्थिरता मृत्यु का शृंगार हो सकती है, जीवन का नहीं।*[10]

नवजागरण के दौरान जिन स्त्री-प्रश्नों को प्रमुखता से उठाया गया, उनमें विधवा के पुनर्विवाह से जुड़ा मुद्दा बहुत महत्त्वपूर्ण था। विधवा के जीवन से जुड़ी सभी परेशानियों का एकमात्र हल विवाह में देखा गया। यह बात अलग है कि उसमें क्षत-योनि और अक्षत-योनि जैसे मसले भी शामिल थे अर्थात शुरुआत में यह बात उठी कि विवाह की छूट उन विधवाओं को दी जाए जो बाल विधवा थीं और जिनका उनके पति से शारीरिक संबंध स्थापित नहीं हुआ था, इसके विपरीत वे युवा स्त्रियाँ जिनका उनके पति से संबंध हो चुका था उन्हें नियमपूर्वक पातिव्रत धर्म का पालन करने दिया जाए। ज़ाहिर-सी बात है नवजागरण के हमारे समाज-सुधारक भी उसी पितृसत्तात्मक समाज से आते थे जहाँ पुरुष का कितनी भी स्त्रियों से शारीरिक संबंध हो, वे हमेशा शुद्ध और पवित्र बने रहते हैं लेकिन स्त्री के चरित्र का प्रमाणपत्र बाँटने की योग्यता उन्हें जन्म से ही प्राप्त हो जाती है।

विधवा के विवाह के निषेध की समस्या केवल सवर्ण जातियों में मौजूद थी। पिछड़ी या दलित जातियों में पहले से ही विधवा के दुबारा विवाह करने पर कोई मनाही नहीं थी। उस ज़माने की स्त्री पत्रिका *चाँद* में साहित्याचार्य मग नाम से एक विद्वान लिखते हैं :

> *सारे संसार की जनसंख्या क़रीब डेढ़ अरब की है, और कहीं भी विधवाओं का पुनर्विवाह स्वर्ग की राह में रोड़ा नहीं अटकाता। और क्या, तीस करोड़ भारतीयों में भी सात करोड़ मुसलमानों के घर और उतने ही अछूतों में विधवाएँ ठुकराई नहीं जातीं। आर्य-समाजी, ब्रह्म-समाजी और क्रिस्तानों में भी विधवाओं को पूरी स्वतंत्रता है। हलवाई, कुर्मी तथा अहीरों ने भी अपनी बहू-बेटियों के दुखों को देखा है। केवल पाँच-सात करोड़ ब्राहमण, क्षत्रियों में ही यह प्रथा है।*[11]

जब विधवा पुनर्विवाह क़ानून बना तो उसने कुछ ऐसी शर्तें लागू कीं जिनसे निम्न वर्ग की स्त्रियों के लिए बड़ी समस्या खड़ी हो गई। नए क़ानून के बनने के पश्चात एक तरह से सवर्णों की समस्या का हिंदूकरण कर दिया गया। सवर्णेतर वर्ग की स्त्रियों को भी इसे मानना पड़ा, जो इस तरह के बंधनों से मुक्त थीं।

राधा कुमार इस समस्या को दर्ज करती हुई कहती हैं :

इस एक्ट की कार्यशैली को लेकर हुए ताज़ा अनुसंधानों से पता चलता है कि किस प्रकार उसने अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों में, जहाँ कि पहले ही विधवा-पुनर्विवाह पर कोई प्रतिबन्ध नहीं था, विधवा-पुनर्विवाह को कितना जटिल बना दिया। हालाँकि क़ानून सभी हिंदू विधवाओं को फिर से विवाह करने का अधिकार देता है, इसमें एक धारा विधवा के पुनर्विवाह के पश्चात संपत्ति के अधिकार से संबंधित जोड़ी गई कि किस प्रकार की संपत्ति वह अपने पास रख सकती है।

अगर संपत्ति उसके मूल परिवार द्वारा दी गई हो या उसे पूरी तरह दे दी गई हो तो उस संपत्ति पर उसका अधिकार पुनर्विवाह के पश्चात समाप्त हो जाएगा बशर्ते कि उसे अपने पास रखने की आग्रहपूर्ण अनुमति दी गई हो। कहने का मतलब यह है कि अगर वह गुज़ारे का अधिकार रखती हो, या विरासत या वसीयतशुदा जायदाद हो तो पुनर्विवाह के बाद उसे खो देगी बशर्ते कि उसके पति ने अपनी मृत्यु से पूर्व ही उसे दुबारा शादी करने की घोषणा की हो या उसकी जाति या समुदाय के नियमों में इस बात का उल्लेख हो कि वह पुनर्विवाह के पश्चात अपनी संपत्ति अपने पास रख सकती है। दोनों ही असम्भाव्य रूप से संभावित घटनाएँ थीं।[12]

इसके बाद जो घटनाएँ हुईं उनमें यह आम तौर पर होने लगा कि जहाँ पहले ही विधवा-पुनर्विवाह प्रचलित था वहाँ जायदाद के लिए लोग ज़बरदस्ती उन महिलाओं का भी विवाह कराने पर ज़ोर देने लगे जो विवाह नहीं करना चाहती थीं। महादेवी विधवा पुनर्विवाह अधिनियम की इस विडंबना को 'भक्तिन' नामक रेखाचित्र में दर्ज करती हैं।

पति की मृत्यु के बाद जब भक्तिन विवाह नहीं करना चाहती थीं तो उनके घरवालों ने उन पर बेतरह दबाव बनाया। यह बात और है कि भक्तिन दृढ़ बनी रहीं। अपने रिश्तेदारों के मंसूबों को पूरा नहीं होने दिया, लेकिन जब भक्तिन की बेटी विधवा हुई तो उसका विवाह एक निकम्मे लड़के से बड़ी ही विचित्र-सी, किंतु पितृसत्तात्मक समाज के लिए स्वाभाविक, घटना के आधार पर ज़बरदस्ती करवा दिया गया। वह लड़की अपनी माँ की सम्पत्ति की उत्तराधिकारी थी।

महादेवी लिखती हैं :

एक दिन माँ की अनुपस्थिति में वर महाशय ने बेटी की कोठरी में घुसकर भीतर से द्वार बन्द कर लिया और उसके समर्थक गाँव वालों को बुलाने लगे। और युवती ने जब इस डकैत वर की मरम्मत कर कुंडी खोली, तब बेचारे पंच समस्या में पड़ गए। तीतरबाज युवक कहता था, वह निमंत्रण पाकर भीतर गया और युवती उसके मुख पर अपनी पाँचों उँगलियों के उभार में इस निमंत्रण के अक्षर पढ़ने का अनुरोध करती थी।

अंत में दूध का दूध पानी का पानी करने के लिए पंचायत बैठी और सबने सिर हिला-हिलाकर इस समस्या का मूल कारण कलयुग को स्वीकार किया। अपीलहीन फ़ैसला हुआ कि चाहे दोनों में एक सच्चा हो चाहे दोनों झूठे; पर जब वे एक कोठरी से निकले तब उनका पति-पत्नी के रूप में रहना ही कलियुग के दोष का परिमार्जन कर सकता है।[13]

आज तक भी महान न्यायाधीशों द्वारा कई बार बलात्कार की सज़ा के रूप में विवाह को पसंद किया जाता है। महादेवी अपने रेखाचित्रों में विधवा-जीवन के यथार्थ को जिस तरह से चित्रित करती हैं उससे यह स्पष्ट होता है कि वे विवाह को हर समस्या का हल नहीं मानतीं। दूसरे वे यह भी समझती हैं कि यदि विधवा स्त्री को अपने पिता की संपत्ति में अधिकार प्राप्त होता तो उसका जीवन इतना दुष्कर नहीं होता।

भाभी की कथा का ज़िक्र हम ऊपर कर चुके हैं, उनके दुख को महसूस करते हुए बार-बार महादेवी की कविताएँ याद आती हैं। जिन कविताओं को वेदना-पीड़ा और असीम-ससीम के दायरे में बाँध दिया गया था दरअसल उनमें इन तमाम स्त्रियों का दुख-दर्द छिपा है। जब वह लिखती हैं—'तोड़ दो यह क्षितिज मैं भी देख लूँ उस ओर क्या है' या 'बाँच ली मैंने व्यथा की बिन लिखी पाती नयन में', तो क्या वह भाभी जैसी तमाम स्त्रियों की व्यथा-कथा नहीं है, जिसे महादेवी बहुत अच्छे से पढ़ चुकी थीं!

उनके रेखाचित्रों में आए हुए ऐसे ही न जाने कितने स्त्री-पात्र हैं, जिनके लिए विवाह एक तरह की सज़ा है और वह सज़ा उन्हें इसलिए स्वीकार करनी पड़ती है क्योंकि स्त्री की पहचान और उसकी सामाजिक स्वीकार्यता के लिए उसका किसी की पत्नी होना ही एकमात्र उपाय बचता है। महादेवी की बिट्टो और बिबिया ऐसी पात्र हैं जो बहुत मेहनती और

Scanned with OKEN Scanner

संघर्षशील हैं और वे अपने गुज़ारे-भर का बहुत आराम से कमा सकती हैं लेकिन बिना विवाह के यह समाज उन्हें स्वीकार करने को तैयार नहीं, इसीलिए दोनों का एक बार नहीं दो-तीन बार विवाह होता है। इन रेखाचित्रों में महादेवी इस बात का स्पष्ट संकेत करती चलती हैं कि विवाह की इस अनिवार्यता से मुक्ति का पहला क़दम स्त्रियों की संपत्ति में बराबर की हिस्सेदारी होगी। ऐसे समय में जब विधवा-पुनर्विवाह का ख़ूब हो-हल्ला था और समाज क्षत-योनि और अक्षत-योनि जैसे मसलों पर अटका था, महादेवी एक स्त्री की दृष्टि से इस पूरी विवाह-व्यवस्था और उसके पीछे छिपी स्त्री के शोषण की कहानी को दर्ज कर रही थीं।

स्त्री-जीवन की व्यथा का अंत केवल विवाह कर देने से नहीं हो सकता। यह उसके आत्मनिर्भर बनने से ही संभव है। *शृंखला की कड़ियाँ* में महादेवी लिखती हैं :

> *हम स्त्रियों के विवाह की चिंता इसलिए नहीं करते कि देश या जाति में सुयोग्य माताओं और पत्नियों का अभाव हो जाएगा, वरन इसलिए कि उनकी आजीविका का हम कोई और सुलभ साधन नहीं सोच पाते।*[14]

हमारे समाज में लड़की के पैदा होने के साथ ही उसके लिए एक बेहतर लड़के की तलाश शुरू हो जाती है, लेकिन विवाह के परिणामों पर दूर-दूर तक कोई चर्चा सुनाई नहीं पड़ती। जब बड़ी संख्या में लड़कियों के स्टोव से जलने और कुएँ में गिरने की घटनाएँ सामने आने लगीं तब कहीं जाकर दहेज-हत्या जैसे क़ानून बने। घरेलू हिंसा लंबे समय तक निजी मामला बनी रही। यदि विवाह कोई जादू की छड़ी होती, जिसके छूते ही सब कष्ट दूर हो जाते तो स्त्री-जीवन इतनी पीड़ाओं से भरा हुआ न होता। सबला का रेखाचित्र लिखते हुए महादेवी के दिमाग़ में कहीं न कहीं यह बात ज़रूर थी। सबला वेश्या माँ की पुत्री है लेकिन उस संसार से बाहर निकलकर तथाकथित सभ्य संसार में अपनी जगह बनाना चाहती है। वह एक युवक से विवाह करती है लेकिन उसका ससुराल उसे पूर्णतः त्याग देता है यहाँ तक कि उसका पति जब गंभीर रूप से बीमार होता है तो भी कोई उसकी मदद करने नहीं आता। यहाँ सवाल उठता है कि जो समाज विवाह को इतना महत्त्व देता है वह उस स्त्री को स्वीकार क्यों नहीं करता? वह न केवल विवाह करती है, बल्कि पूरे प्राण-पण से पातिव्रत धर्म का निर्वाह करती है, और तो और अपनी माँ से भी सारे संबंध समाप्त कर लेती है। फिर भी समाज की नज़रों में वह अपवित्र क्यों है? महादेवी व्यंग्य करती हुई कहती हैं :

> *मैं अनेकों से पूजनीया माँ और आदरणीया बहिन का संबोधन पाती रही हूँ; किंतु इसे कौन अभागा माँ-बहिन कहकर अपवित्र बनेगा? और वह जानना चाहती है, अपने अपवित्र माने जाने का कारण? यह अपने विद्रोही पति के साथ सती ही क्यों न हो जावे; परंतु इसके रक्त के अणु-अणु में व्याप्त मलिन संस्कार कैसे धुल सकेगा? स्वेच्छाचार से उत्पन्न यह पवित्रता की साधना उस शूद्र की तपस्या के समान ही बेचारे समाज की वर्ण-व्यवस्था का नाश कर रही है, जिसका मस्तक काटने के लिए स्वयं मर्यादा-पुरुषोत्तम दौड़ पड़े थे।*[15]

यह समाज उसी व्यवस्था को स्वीकार करता है जिसमें स्त्री मूक पशु के समान निर्दिष्ट नियमों का पालन करती रहे। स्त्री-जीवन से जुड़ा एक बेहद अहम मुद्दा है श्रम का। नारीवादी आंदोलनों की बड़ी माँग रही है स्त्री-श्रम के मूल्य का निर्धारण। जिन महादेवी के स्त्री-विमर्श पर इकहरा होने का आरोप है, उनके रेखाचित्रों में स्त्री-श्रम के महत्त्व की पड़ताल के नतीजे काफ़ी दिलचस्प हैं। जहाँ पितृसत्ता स्त्री को कोमल और कमज़ोर मानकर उसके श्रम को कोई महत्त्व नहीं देती वहीं महादेवी के यहाँ स्त्री परिवार संचालन की मुख्य भूमिका में उपस्थित है।

वे अपने पात्रों के माध्यम से पितृसत्ता द्वारा रचे गए स्त्री-मिथक का रचनात्मक प्रतिरोध रचती हैं। उनकी सबिया, लछमा, भक्तिन हों या बदलू की पत्नी और मुन्नू की माई, सभी अथक श्रम में लगी हुई स्त्रियाँ हैं। सबिया का पति जब उसे छोड़कर चला जाता है तो कैसे वह पूरे घर के संचालन का ज़िम्मा अपने ऊपर लेती है इसका ज़िक्र ऊपर हो चुका है। लछमा एक ऐसी स्त्री की कहानी है जिसका विवाह एक मानसिक रूप से अल्पविकसित पुरुष के साथ होता है।

लछमा इसे अपनी नियति मानते हुए जब उस स्थिति में भी अपने कठिन परिश्रम से पति और घर की देखभाल में लग जाती है तो यह उसके परिवार वालों से बर्दाश्त नहीं होता क्योंकि उसकी अनुपस्थिति में ही वे उस जायदाद के मालिक बन सकते थे। लछमा को मार-पीटकर घर से निकाल दिया जाता है :

अनेक अत्याचार सहकर भी जब लछमा ने अपना अधिकार छोड़ने की इच्छा नहीं प्रकट की तब एक बार वह इतनी अधिक पीटी गई कि बेहोश हो गई और मृत समझकर खड्ड में छिपा दी गई। कैसे वह होश में आई और किस असह्य कष्ट से घिसट-घिसट कर खड्ड के पार दूसरे गाँव तक पहुँच सकी, यह बताना कठिन होगा। [16]

इस तरह का अत्याचार सहने के बाद भी लछमा ने हार नहीं मानी और अपने मायके वालों की सेवा-सुश्रूषा में लगी है। उसके घर की स्थिति कुछ इस तरह है :

बाप की आँखें ख़राब हैं, माँ का हाथ टूट गया है और भतीजी-भतीजे की माता परलोकवासिनी और पिता विरक्त हो चुका है। सारांश यह कि लछमा के अतिरिक्त और कोई व्यक्ति इतना स्वस्थ नहीं, जो इन प्राणियों की जीविका की चिंता कर सके। [17]

लछमा को जीवित जानकर एक बार फिर उसके ससुराल वाले उसके पति को साथ लेकर उसे लिवा जाने के लिए आते हैं लेकिन लछमा अपने पति से कहती है कि अपनी सारी संपत्ति उन भाइयों को सौंपकर उसके पास ही आकर रहे और वह जैसे इस पूरे परिवार की देखरेख कर रही है वैसे ही अपने परिश्रम के बल पर उसका ध्यान भी रख लेगी। लछमा का ससुराल वापस न जाना समाज की दृष्टि में उसके चरित्र को लेकर की जाने वाली चर्चाओं का आधार बनता है।

लछमा के बारे में समाज द्वारा लगाए जा रहे अभियोगों के संदर्भ में महादेवी लिखती हैं :

इस तरह पग-पग पर पुरुष से सहायता की याचना न करनेवाली स्त्री की स्थिति कुछ विचित्र-सी है। वह जितनी ही पहुँच के बाहर होती है, पुरुष उतना ही झुँझलाता है और प्राय: यह झुँझलाहट मिथ्या अभियोगों के रूप में परिवर्तित हो जाती है। [18]

लछमा इन अभियोगों की परवाह किए बिना अपने कर्म में दृढ़ है।

महादेवी के रेखाचित्रों में अलग-अलग वर्ग की स्त्रियाँ हैं लेकिन सबकी समस्या कमोबेश एक-सी ही है। इस सामाजिक व्यवस्था में जहाँ स्त्री का किसी न किसी के नियंत्रण में रहना आवश्यक है, जैसे ही कोई स्त्री उस दायरे से बाहर निकलने की कोशिश करती है वह दुश्चरित्र, कुलटा आदि त्रिविध उपाधियों से विभूषित कर दी जाती है और उसे इतना विवश किया जाता है कि वह आत्महत्या तक की स्थिति तक पहुँच जाती है। हम डायन, टोनही जैसी न जाने कितनी महिलाओं के बारे में बचपन से ही सुनते आए हैं, वे सब वही महिलाएँ थीं जिन्होंने पितृसत्ता द्वारा खींची गई लक्ष्मण-रेखा को पार करने की कोशिश की।

स्त्री का दासत्व अन्य प्रकार के दासत्व से इस मायने में अलग है कि यहाँ दास अपने दासत्व को ख़ुशी-ख़ुशी स्वीकार करता है। विवाह के आवरण में, प्रेम के जाल में स्त्री जीवन-भर उसके लिए दूसरों द्वारा तय किए गए कार्यों को पूरी निष्ठा से करती रहती है। प्रेम का ऐसा स्वरूप जो स्त्री से उसका अस्तित्व छीन लेता है। अपने मैं को उस दूसरे मैं में लीन कर देना ही हमारे यहाँ आदर्श प्रेम या विवाह माना जाता है। इसकी परिणति को महादेवी बख़ूबी समझती थीं। शायद यही कारण है कि उनकी कविताओं में मिलन की जगह विरह ज़्यादा महत्त्वपूर्ण है। 'मिलन का मत नाम लो मैं विरह में चिर हूँ' या 'मिलन में एकाकी विरह में है दुकेला' जैसी पंक्तियों में दुकेलेपन को बचाकर रखने की कामना व्यक्त हुई है। यह दुकेलापन ही स्त्री के अपने अस्तित्व की सजग पहचान है। अगर हम प्रेम के मोहक जाल में प्रेमी की हर मर्ज़ी को सर-माथे लगाते हुए चलते जाएँगे तो स्त्री-जाति की स्थिति में परिवर्तन होना असंभव है।

महादेवी स्त्री-सशक्तिकरण की प्रबल पक्षधर हैं। वे मानती हैं कि जब तक स्त्री दृढ़ नहीं होगी, यह समाज उसे बार-बार पीछे ढकेलने की कोशिश करता रहेगा :

खड़ा हुआ व्यक्ति यदि अपने गिरने की घोषणा सुनते-सुनते खड़े होने के प्रयास को व्यर्थ समझने लगे, तो आश्चर्य क्या! इसी कारण जब तक स्त्री स्वभाव से इतनी शक्तिशालिनी नहीं होती कि मिथ्या पराभव की घोषणा से विचलित न हो, तब तक उसकी स्थिति अनिश्चित ही रहती है। [19]

महादेवी के रेखाचित्र स्त्री-जीवन की संघर्षपूर्ण कहानी के विभिन्न पहलुओं को बड़ी ही गंभीरता से दर्ज करते हैं। इन चित्रों में वे केवल समस्याओं का वर्णन करके ही नहीं रुक जातीं, बल्कि उसके पीछे छिपे कारणों को भी सूक्ष्मता से प्रकाशित करती हैं। महादेवी संघर्ष को बहुत महत्त्व देती हैं। वे जानती हैं कि इस समाज में अपने अधिकार को प्राप्त

करने के लिए कठिन संघर्ष की आवश्यकता है। यह किसी और के द्वारा नहीं किया जाएगा, महिलाओं को ही करना होगा। तभी समस्या का वास्तविक हल मिल सकेगा।

शायद इसीलिए वह नवजागरणकालीन सुधारों को लेकर कहीं पर भी मंत्रमुग्ध नहीं दिखाई पड़तीं। सुधा सिंह लिखती हैं :

> *लेकिन जिन चीज़ों को नवजागरण की उपलब्धियों में गिनाया जाता है, महादेवी उन्हीं की जड़ों पर निर्ममता से बिना नाम लिये प्रहार करती हैं। मसलन, नवजागरण के तहत चले समाज-सुधार आंदोलनों का स्त्रियों से जोड़कर अनालोचनात्मक महिमामंडन किया जाना स्त्री-मुक्ति और स्त्री-चेतना के लिए मील का पत्थर क़तई नहीं है।*[20]

हम जानते हैं कि महादेवी ने स्वयं विवाह के बंधन को कभी स्वीकार नहीं किया। न ही अपने आप को किसी संस्था की सीमाओं में बाँधा। हर जगह स्त्री की स्थिति को वे समझ रहीं थीं। जीवन-भर स्वतंत्र रहीं और अपने आप को उनकी देख-रेख में लगा दिया जो कमज़ोर और असहाय थे। उनके रेखाचित्र उनकी दृष्टि की व्यापकता के प्रमाण हैं।

सत्यप्रकाश मिश्र लिखते हैं :

> *महादेवी उन महिलाओं में हैं जिन्होंने विवाह संस्थान को अस्वीकार किया। उनका विवाह एक डॉक्टर से हुआ पर विदा होकर उसके घर जाने से उन्होंने दृढ़तापूर्वक मना कर दिया। पिता ने विवाह के बन्धन से मुक्ति के लिए धर्म-परिवर्तन की सलाह दी, बल्कि बेटी के लिए स्वयं भी धर्म-परिवर्तन को तैयार हो गए लेकिन महादेवी ने इसको भी नकार दिया। उन्होंने अनेक धार्मिक सम्प्रदायों को टटोला था, वहाँ उन्हें स्त्री का अपमान और किसी न किसी प्रकार की सड़ाँध ही दिखी। बौद्ध धर्म में दीक्षित होने गईं, लौट आईं, और अंततः गांधी के प्रभाव से सेवा का व्रत लिया। झूँसी में दरिद्र, प्रताड़ित, बेसहारा, निष्कासित और असहाय बच्चों को पढ़ाने के लिए स्कूल खोला।*[21]

महादेवी का व्यक्तिगत जीवन एक स्त्री के रूप में स्वतंत्रता और आत्मनिर्भरता की मिसाल है। उन्होंने न केवल अपना जीवन अपनी शर्तों पर जिया बल्कि ग़रीब और बेसहारा लोगों की लगातार मदद करती रहीं।

हिंदी आलोचना महादेवी के रचनाकर्म को लेकर हमेशा एक द्वंद्व में रही है, वह उनके गद्य को तो प्रगतिशील मान लेती है लेकिन कविता को बने-बनाए घेरे से बाहर नहीं निकलने देना चाहती है। दूधनाथ सिंह 2009 में लिखी गई अपनी *महादेवी* शीर्षक किताब की शुरुआत में ही महादेवी की कविता के दुख को सारी भारतीय स्त्रियों का दुख घोषित करते हैं। वे लिखते हैं :

> *वह बीसवीं सदी की सारी भारतीय स्त्रियों का दुख है जो अपनी चाहना का गंतव्य जानते हुए भी नहीं जानतीं, या नहीं जानना चाहतीं। जो अदम्य लालसा सात पर्दों में है, महादेवी के गीत उसी की सार्वजनीन अभिव्यक्तियाँ हैं। इसीलिए महादेवी सारी भारतीय स्त्रियों में समाहित हैं।*[22]

आगे दूधनाथ जी उनके स्त्री-विमर्श को इस अर्थ में तात्कालिक कहकर उसके महत्त्व को कम करने की कोशिश करते हैं कि महादेवी विवाह और परिवार के वर्तमान स्वरूप तक पहुँचने की प्रक्रिया से अनभिज्ञ थीं :

> *महादेवी विवाह और परिवार संस्था के इस अतीत को जिसके भीतर से आज की स्त्री का दास्य भाव और दमन पैदा हुआ है, गहरे जाकर छानबीन नहीं करतीं। उनका स्त्री-विमर्श तात्कालिक और कुछ-कुछ इकहरा है।*[23]

दूधनाथ जी महादेवी के स्त्री-विमर्श को तात्कालिक और इकहरा तो घोषित करते हैं लेकिन इसके पक्ष में कोई प्रमाण देना ज़रूरी नहीं समझते।

यही दूधनाथ जी आगे उनके निजी जीवन की अनेक घटनाओं का खुलासा करते हैं। उनकी कविताओं में आई वेदना को उनके निजी जीवन की एक घटना से जोड़कर देखते हैं। उनके रेखाचित्रों के प्रसंग में वे लिखते हैं कि उनका एकांत जीवन अनेक स्त्रियों के दुख-पीड़ा को देखने के बाद प्रतिक्रिया में लिया गया निर्णय था और यह भी कि उनके मनोविज्ञान को समझना इतना आसान नहीं है। जब उनके मनोविज्ञान को समझना आसान नहीं है तो उनके स्त्री-विमर्श को तात्कालिक और इकहरा कैसे मान लिया गया?

अपने रेखाचित्रों में वे जिस तरह से स्त्री-जीवन की

समस्या को विश्लेषित करती हैं, यह उनकी गंभीर सोच और स्पष्ट दृष्टि का परिणाम था। जो महादेवी अपने जीवन को विवाह और तथाकथित परिवार के बंधन से मुक्त रखती हैं उनका स्त्री-विमर्श तात्कालिक कैसे मान लिया जाए? यह हिंदी आलोचना का द्वंद्व है जहाँ महादेवी का रचनाकर्म इतना ठोस है कि उसे नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता लेकिन कहीं कोई गाँठ भी है जिसके कारण उसे पूर्णतः स्वीकार करना भी संभव नहीं है। आ

संदर्भ

1. सुधा सिंह, *स्त्री संदर्भ में महादेवी,* अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूशर्स लिमिटेड 2017, 'पुंसवादी आलोचना के ख़तरे और महादेवी', पृष्ठ सं.165
2. संपादक निर्मला जैन, *महादेवी साहित्य खंड-3,* 'अपनी बात', वाणी प्रकाशन चतुर्थ संस्करण 2017, पृ. 5
3. वही, पृ. 5-6
4. संपादक निर्मला जैन, *महादेवी साहित्य खंड-1,* वाणी प्रकाशन चतुर्थ संस्करण 2017, पृ. 264
5. संपादक निर्मला जैन, *महादेवी साहित्य-खंड 3,* 'भाभी', वाणी प्रकाशन चतुर्थ संस्करण 2017, पृ. 26
6. वही, 'सबिया', पृ. 35
7. रमाशंकर विद्रोही, *नई खेती,* नवारुण प्रकाशन 2018, 'औरत', पृ. 41
8. संपादक निर्मला जैन, *महादेवी साहित्य-खंड 3,* वाणी प्रकाशन चतुर्थ संस्करण 2017, 'बिट्टो', पृ. 40
9. संपादक निर्मला जैन, *महादेवी साहित्य-खंड 3,* वाणी प्रकाशन चतुर्थ संस्करण 2017, 'बिबिया', पृ. 140-141
10. संपादक निर्मला जैन, *महादेवी साहित्य-खंड 4,* वाणी प्रकाशन चतुर्थ संस्करण 'जीने की कला', 2017, पृ. 272
11. *चाँद संकलन :* विधवा प्रश्न, बाल विवाह 1922-1931 सेंटर फॉर वूमन'स डेवलपमेंट स्टडीज, नई किताब प्रकाशन, 2021 'वैधव्य' पृ. 185
12. राधा कुमार, *स्त्री संघर्ष का इतिहास,* अनुवाद एवं सम्पादन– रमाशंकर सिंह दिव्यदृष्टि, वाणी प्रकाशन, 2014 पृ. 49
13. संपादक निर्मला जैन, *महादेवी साहित्य-खंड 3,* वाणी प्रकाशन चतुर्थ संस्करण 2017, 'भक्तिन', पृ. 83
14. संपादक निर्मला जैन, *महादेवी साहित्य-खंड 4,* वाणी प्रकाशन चतुर्थ संस्करण 2017, 'हिंदू स्त्री का पत्नीत्व', पृ. 288
15. संपादक निर्मला जैन, *महादेवी साहित्य-खंड 3,* वाणी प्रकाशन चतुर्थ संस्करण 2017, 'सबला', पृ. 55
16. संपादक निर्मला जैन, *महादेवी साहित्य-खंड 3,* वाणी प्रकाशन चतुर्थ संस्करण 2017, लछमा, पृ. 72
17. वही, पृ. 71
18. वही, पृ. 76
19. वही,
20. सुधा सिंह, *स्त्री संदर्भ में महादेवी,* अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूशर्स लिमिटेड 2017, 'स्त्री नवजागरण और राष्ट्रवाद', पृ. 10
21. https://web.archive.org/web/20070922133831/http://www.tadbhav.com/Mahadevi%20ka.htm#mahadevi
22. दूधनाथ सिंह, *महादेवी,* राजकमल प्रकाशन 2009, पृ. 21
23. वही, पृ. 99

Scanned with OKEN Scanner